पदच्छेद–अन्वय

और

सरल भाषाटीका सहित

असंख्यैः प्राचीनैर्जननि जननैः कर्मविलया-
द्गते जन्मन्यन्तं गुरुवपुषमासाद्य गिरिशम् ।
अवाप्याज्ञां शैवीं क्रमतनु पि त्वां विदितवान्
नयेयं त्वत्पूजास्तुतिविरचननैव दिवसान् ॥

संपादक तथा प्रकाशक

श्री राम शैव (त्रिक) आश्रम

फतेहकदल–श्रीनगर

॥ सर्वाधिकार सुरक्षित हैं ॥

सं० १९६२

प्रथम संस्करण : १५००   मूल्य दो रुपये

...त होता है, पांच

...का संग्रह ह ... शक्ति की स्तुति की गई है। कश्मीर प्राचीन काल से ही शिव शक्ति के अभेद का उपासक रहा है और शाक्त, तान्त्रिक, शैव तथा त्रिकादिमतों का केन्द्र रहा है। पंचस्तवी यहां का सर्वप्रिय और सर्वोत्तम स्तोत्र-ग्रन्थ माना गया है। यहां के नर नारी, बूढे, युवक तथा बच्चे इसके मधुर श्लोकों का गान करके जहां मनोविनोद प्राप्त करते हैं, वहां इसके गूढार्थविमर्शन से आध्यात्मिक शान्ति भी पाते हैं। हर पर्व पर, हर देवस्थान पर सायं प्रातः इसके श्लोकों का गायन किया जाता है।

यह ग्रन्थ बहुत पुराना बताया जाता है और कुछ विद्वानों के अनुमान के अनुसार इसे श्री धर्माचार्य की कृति माना गया है।

यह ग्रन्थ आध्यात्मिक रहस्यों और मर्मों से पूर्ण है और गुरु परम्परा तथा मुखाम्नाय से ही इसका प्रचार गुरुजन शिष्यमण्डल में करते आये हैं। संभवतः इसी कारण आजतक किसी आचार्य ने इसकी टीका नहीं लिखी।

महामाहेश्वराचार्य श्री स्वामी राम जी महाराज जिन्हें आधुनिक युग का शिवावतार मानना चाहिये ने श्री राम शैव (त्रिक) आश्रम का संस्थापन करके लुप्तप्राय त्रिकमत को पुनर्जीवित किया। उनके दिव्य दर्शनों तथा विद्वत्ता से आकर्षित होकर जनता उनके दर्शनों को आती और इनके यौगिक चमत्कारों से हर्षमग्न हो जाती।

प्रकार स
सम्बन्ध दिलाते।

उनके सच्छिष्य श्री स्वामी गोविन्द कौल जी, जिन्हें गुरुदेव ने प्रत्यभिज्ञाकार की पदवी दी थी, ने इस आश्रम का कार्य-क्रम चलाने का भार अपने कन्धों पर लिया और ठीक अपने गुरुदेव के पथ पर चलते हुए इस शास्त्र का प्रचार और गुरुदेव की कार्यप्रणाली को आगे बढाया।

यह पुस्तिका उन्हीं विचारों तथा विमर्शों का संकलन है और लोकहितार्थ इसे सर्वसाधारण जनता के लिए प्रस्तुत किया जाता है। आशा है कि जनता हमारे इस उद्योग को सफल बना कर हमारा उत्साह बढायेंगे।

इस तुच्छ कृति को हम गुरुजनों की देन समझ कर उनके ही पूज्य चरणों की भेंट करते हैं और प्रार्थी हैं कि श्री चरण पाठकों को इसके पढने का सच्चा लाभ प्राप्त करायें।

भवदीय
श्री राम शैवाश्रम फतेह कदल
श्रीनगर–कश्मीर

२४ जून, १९६२
१० आषाढ़ २०१९

ॐ

अथ लघुस्तवः प्रथमः ॥

नमस्त्रिपुरसुन्दर्यै ॥

लघुस्तवः प्रथमोऽयमारभ्यते ॥

ऐन्द्रस्येव शरासनस्य दधती मध्ये ललाटं प्रभां
शौक्लीं कान्तिमनुष्णगोरिव शिरस्यातन्वती सर्वतः।
एषाऽसौ त्रिपुरा हृदि द्युतिरिवोष्णांशोः सदाहः स्थिता
छिन्द्यान्नः सहसा पदैस्त्रिभिरघं ज्योतिर्मयी वाङ्मयी ।१।

पदच्छेदः

ऐंद्रस्य इव शरआसनस्य दधती मध्ये ललाटं प्रभां
शौक्लीं कान्तिम् अनुष्णगोः इव शिरसि आतन्वती सर्वतः ।
एषा असौ त्रिपुरा हृदि द्युतिः इव उष्णांशोः सदा अहः (हः) स्थिता
छिन्द्यात् नः सहसा पदैः त्रिभिः अघं ज्योतिः मयीवाक्मयी ॥१॥

ललाटं	— ललाट के	हः स्थिता	— ठहरी हुई ह कार में स्थित (नित्योदित)
मध्ये	— मध्य में		
ऐन्द्रस्य	— इन्द्र के	एषाऽसौ	— यही वह (जो
शरासनस्य	— धनुष के		

(इन्द्रधनुष के)
इव — समान
प्रभां — शोभा को
दधती — धारण करती हुई
शिरसि — सिर में
अनुष्णगो: — चन्द्रमा के
इव — समान
शौक्लीं — निर्मल (श्वेत)
कांति — दीप्ति को
सर्वत: सब ओर से [स, रु, अत:]
आतन्वती — विस्तारती हुई
हृदि — हृदय में
उष्णांशो — } सूर्य के समान
द्युतिरिव — } तेजस्वी
सदा — नित्य
अह:स्थिता — दिन की अवस्था में

प्रत्यक्ष है और
जिसका वर्णन
आरम्भ किया
जाता है)
ज्योतिर्मयी — प्रकाशमय (तथा)
वाङ्मयी — बाणीमय (विमर्श-
मय)
त्रिपुरा — त्रिपुरा भगवती*
न: — हमारे
अघं — पाप को
त्रिभि: — तीन
पदै: — पदों
{ १ ललाट २ सिर ३ हृदय
{ १ ऐं २ क्लीं ३ सौ: } से
सहसा — शीघ्र ही†
छिन्द्यात् — नष्ट करे ॥

जो यह प्रत्यक्ष त्रिपुरा भगवती इन्द्र के धनुष के समान अपनी दीप्ति को ललाट (माथा) में धारण करती है, और सिर में चन्द्रमा जैसी निर्मल दीप्ति को सब ओर से विस्तार करती है तथा हृदय में जो प्रतिदिन नित्य सूर्य की दीप्ति जैसी शोभित है अर्थात जिसको रात्रि का कभी भी प्रवेश नहीं है, यही वह त्रिपुरा (जो सब को प्रति समय प्रत्यक्ष स्वानुभव सिद्ध है अथवा जो सबके शरीरों में नित्य इन तीन स्थानों पर तीन प्रकार के स्वरूपों को धारण करती है) हम को शीघ्र ध्यान करते हुए ही (ऊपर कहे हुए तीन स्थानों) पदों से अथवा मंत्र विधि के अनुसार मंत्र बीजों से हमारे पापों (अज्ञान रूप मल) को नष्ट करे।

जैसा कि इसी स्तव के १६वें श्लोक में कहा है—कि त्रिपुरा

*तीनों में व्यापक १ श्लोक १६ प्रथमस्तव देखिए। †[स, ह, सा बीजाक्षर]

का अर्थ सृष्टि, स्थिति और संहार करने वाली; रजोगुण, सतोगुण और तमोगुण में ठहरे हुए, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र कहने वाले; अकार, उकार और मकार नाम वाले, ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत रूप तीन वर्णों को पूर्ण करने वाली त्रिपुरा कहलाती है, अर्थात सारे त्रिपुटी रूप जगत को विशेष से ललाट, सिर और हृदय में जो बीज अक्षरों (ऐं-क्लीं-सौः) के उच्चारण स्थान है; स्फार देती है।

मंत्रोंद्धार विधि पूर्वक :—इस स्तव के २०वें श्लोक में "बोद्धव्या निपुणं बुधैः स्तुतिरियं" में सूचना है कि पहिले श्लोक के चार पदों में से एक एक पद का पहला, दूसरा और तीसरा मंत्र अर्थात् पहिले पद में पहला मंत्र वर्ण, दूसरे में दूसरा और तीसरे में तीसरा मंत्र वर्ण स्पष्ट है। इस कारण ऐं-क्लीं-सौः एक संपूर्ण मंत्र बन जाता है। जिसका उच्चारण क्रम से तीन स्थानों पर हो सकता है और "विशेषसहितं" का तात्पर्य यही है। "सर्वतः" अर्थात "र" को भी बीजाक्षर के साथ मिला कर दूसरा बीज बनता है। जैसे :—क्लीं; इसी प्रकार "सदा हः स्थिता" अर्थात् "ह" भी मंत्रों के साथ मिलाया जाए; जैसे :– "हैं-हस्क्लीं-हसौः"। "सहसा पदैस्त्रिभिः" अर्थात् "हस" भी मंत्रों के साथ मिलावे जैसे :– हसै, ह्स्क्लीं, ह्सौः, हसै, ह्स्क्लरी। इन तीन बीजों के नाम "सारस्वत" "कामराज" और "वाड़व" बीज है।

शरीर में सिर और हृदय के मध्य में ललाट है। जिस में सब नाडियां मिल जाती है तथा इच्छा, ज्ञान, क्रिया शक्ति के संघट का मध्य ज्ञान शक्ति है, जिसमें इच्छा और क्रिया शक्तियां सब मिल जाती है और विश्व रूप को निर्विकल्प भाव से सारे वर्णों (रंगों) से संयुक्त स्थिति रूप में (अवतार) धारण करती है, जैसे इन्द्र धनुष यद्यपि एक ही वस्तु प्रतीत होता है फिर भी सारे वर्ण इस में स्पष्ट है।

ज्ञान शक्ति में एक ऐसा पद है जिस से शिव में भी प्रवेश

होता है और भेदमय जगत में भी क्रिया शक्ति की प्रधानता से प्रवेश होता है। सिर में तो क्रिया शक्ति प्रधान चन्द्रमा की दीप्ति जैसी सब ओर से अपने स्वरूप को सृष्टि स्वरूप में विस्तारती है और हृदय में उष्ण किरणों से भेदमय जगत को जला देती है अर्थात् संहार करती है। जैसा कि तन्त्रालोक के आह्निक ३ श्लोक ६ की टीका में कहा है :—

"ऊर्ध्वेस्थिता चन्द्रकला च शान्ता
पूर्णामृतानन्दरसेन देवि !"
"अधः संहार कृज्ज्ञेयो महानग्निः कृतान्तकः"।

इसी प्रकार हृदय अर्थात इच्छा शक्ति प्रधान अवस्था में सूर्य की दीप्ति के समान अर्थात् संहार कारक नित्य उदय में आए हुए किरणों से स्थित है। इस लिए श्लोक के क्रम पूर्वक तीन शक्तियों ज्ञान क्रिया और इच्छा शक्ति में त्रिपुरा का जो स्वरूप है उसका अभ्यास करना उपदेश दिया है, इस प्रयोजन की दृष्टि से श्लोक में प्रकाशमय और वाणीमय के विशेषणों से स्पष्ट किया है। इसका अर्थ यह है :–इच्छा आदि तीन शक्तियों त्रिपुरा का स्वरूप विमर्शमय दिखाया है और मंत्र रूप बीजाक्षरों के अर्थ में वाणीमय कहा हुआ है अर्थात् परारूप हृदय से ही पश्यन्ती मध्यमा और वैखरी वाणी द्वारा आदिक्षान्त ('अ' से 'क्ष' तक) सब वर्णों को प्रसर करती है जैसा साम्ब पंचाशिका के श्लोक ४ में स्पष्ट है ॥१॥ "या सा मित्रावरुणसदनात्"

या मात्रा त्रपुसीलतातनुलसत्तन्तूत्थिति स्पर्धिनी
वाग्बीजे प्रथमे स्थिता तव सदा तां मन्महे ते वयम्।
शक्तिः कुण्डलिनीति विश्वजनन व्यापार बद्धोद्यमा
ज्ञात्वेत्थं न पुनः स्पृशन्ति जननी गर्भेऽर्भकत्वं नराः ॥२॥

पदच्छेदः

या मात्रा त्रपुसीलतातनुलसत् तन्तु उत्थिति स्पर्धिनी
वाक् बीजे प्रथमे स्थिता तव सदा तां मन्महे ते वयम् ।
शक्तिः कुण्डलिनि इति विश्वजनन व्यापार बद्ध उद्यमा
ज्ञात्वा इत्थं न पुनः स्पृशन्ति जननी गर्भे अर्भकत्वं नराः ॥२॥

या	— जो	कुण्डलिनि	— कुण्डलिनी रूप[3]
त्रपुसीलता	— राँगे बेल की[1]	शक्तिइति	— शक्ति ही
तनु	— सूक्ष्म	विश्वजनन	— जगत के उत्पन्न करने के
उल्लसत	— निकलती हुई	व्यापार	— काम में
तंतु	— तार के	बद्धोद्यमा	— उद्योग किये हुए हैं
उत्थिता	— आरम्भ के साथ	इत्थं	— इस प्रकार (के स्वरूप को)
स्पर्धिनी	— समानता वाली	ज्ञात्वा	— जानकर
मात्रा	— अंश[2]	नराः	— मनुष्य
तव	— तुम्हारे	जननी	— माता के
प्रथम	— पहले	गर्भे	— गर्भ में
वाग्बीजे	— वाणी के बीज में (परावाणी)[3]	अर्भकत्वं	— बालक भाव को
स्थिता	— स्थित है	पुनः	— फिर
तां	— उसी वाणी का	*न स्पृशन्ति*	— *स्पर्श नहीं करते हैं* [अर्थात मुक्त हो जाते हैं ।]
ते वयं	— वह हम (उत्कृष्ट भक्त)		
सदा	— नित्य		
मन्महे	— विमर्श करते हैं ।		

---

१. कश्मीरी ग्यवथीर की बेल को हिन्दी में राँगे बेल कहते हैं ।

२. ऐं, यही मात्रा, बाहर निकलने को तैयार, सृष्टि रूप ।

३. शिवभाव में लीन, प्रकाशमय और अपनी इच्छा से ही जगत रूप में परिवर्तित होने वाली शक्ति ।

जो मात्रा, अर्थात् ज्ञान द्वारा संसार भय से बचाने वाली तुम्हारे प्रथम वाग्बीज [ऐं] में ठहरी हुई—त्रपुसीलता [ग्यवथीर] की सूक्ष्मता से निकली हुई आरम्भ तार के समान है अर्थात् अतिसूक्ष्म प्रसर स्वरूप को धारण करती है। हम उस तुम्हारी मात्रा का निरन्तर विमर्श करते हैं, वही यह कुण्डलिनी शक्ति सदाशिव से पृथ्वी तक जगत को उत्पत्ति करने की क्रिया के लिए बान्धे हुए उद्योग वाली है। इस प्रकार इसका ज्ञान पाकर मनुष्य दुबारा मां के गर्भ में बालक भाव का स्पर्श नहीं करते हैं। अर्थात् इसी जन्म में मुक्त होते हैं।

रहस्य अर्थ में परा भगवती का प्रथम वग्बीज पश्यन्ती वाक् है, जो ज्ञानशक्ति रूप अपने स्वरूप सदा शिव तत्त्व में स्थित रह कर ही जगत को अंकुरायमान अवस्था में प्रकाशित करती है।

संवित अर्थ में जो कुण्डलिनी शक्ति अर्थात 'कुण्ड' शिव स्वरूप में जो लीन शक्ति है, वही मात्रा स्वरूप के ज्ञान से [सारे जगत को रक्षा करने वाली] एक प्रकार की लता अथवा रांगाबेल की तरह निकली हुई आरम्भ के साथ समानता करती है, [यह ग्यवथीर की उपमा क्यों ?] [यह लता चमकीली और इसका फूटता हुआ सिरा बहुत सूक्ष्म होता है] वह आपके वाग्बीज अर्थात 'परा' में ठहरती है। [क्योंकि पश्यन्तीं, मध्यमा, वैखरी रूप से वही सूक्ष्म तार धारण कर निकलती है। उसी तुम्हारे वाग्बीज का विमर्शन करते हैं।

जो कुण्डलिनी शक्ति जगत के उत्पति क्रिया में बांधे हुए उद्योग वाली है। ऐसे ज्ञान की प्राप्ति पर पशु प्रमाता फिर मां के गर्भ में जन्म नहीं लेते हैं अर्थात मुक्त होते हैं॥ २॥

दृष्ट्वा संभ्रमकारि वस्तुसहसा ऐऐ इति व्याहृतम्
येनाऽकूतवशादऽपीह वरदे! बिन्दुं विनाप्यक्षरम्।

तस्यापि ध्रुवमेव देवि तरसा जाते तवानुग्रहे
वाचःसूक्तिसुधारसद्रवमुचो निर्यान्ति वक्त्राम्बुजात् ॥३॥

पदच्छेदः

दृष्ट्वा संभ्रमकारि वस्तु सहसा ऐऐ इति व्याहृतम्
येन आकूतवशात् अपि इह वरदे ! बिन्दुं विना अपि अक्षरम् ।
तस्य अपि ध्रुवम् एव देवि ! तरसा जाते तव अनुग्रहे
वाचः सूक्तिसुधारसद्रवमुचः निर्यान्ति वक्त्रअम्बुजात् ॥ ३ ॥

वरदे !	— हे (भोग तथा मोक्ष का) वर देने वाली	व्याहृतं	— उच्चारण किया हो
येन	— जिसने	तस्य अपि	— उसके भी
इह	— इस संसार में	वक्त्र	— मुख
संभ्रमकारि	— कोई आश्चर्य जनक	अम्बुजात्	— कमल से
वस्तु	— पदार्थ	देवि !	— हे क्रीडन शीलदेवी
दृष्ट्वा	— देखकर	तरसा	— शीघ्र ही
आकूत	— भय या हर्ष के	तव	— तुम्हारे
वशात्	— अभिप्राय से	अनुग्रहे	— अनुग्रह के
अपि	— भी	जाते	— उत्पन्न होने पर
सहसा	— शीघ्रता से	सूक्ति	— उत्तम वाणी रूपी
ऐ ऐ इति	— ऐ ऐ इस प्रकार*	सुधारस	— अमृत रस के
बिन्दुं विना	— बिन्दु के विना	द्रवमुचो	— प्रवाह को देनेवाली
अपि	— भी	वाचः	— वाणियां
अक्षरम	— अक्षर का	ध्रुवं एव	— निश्चय ही
		निर्यान्ति	— निकलती हैं।

हे वरदे ! किसी आश्चर्यजनक वस्तु को देखकर शीघ्र ही

*जब कोई मनुष्य किसी आश्चर्य जनक या भयदायक वस्तु को देखता है तो उसके मुख से अकस्मात् ही ऐ ऐ पद निकलता है यही ऐं बीज अक्षर बिन्दु के बिना है।

"ऐं" के स्थान पर जिसने विना बिन्दु के ही "ऐ ऐ" किसी हर्ष या भय के अभिप्राय से भी अज्ञान में भी उच्चार किया हो अथवा ज्ञान की उत्पत्ति के विना ही 'ए ए' का विमर्श किया हो उसको भी हे देवी ! अवश्य ही यदि तुम्हारा अनुग्रह उदय में आया हो तो उसके मुखकमल से पश्यन्ती आदि वाणियां ज्ञानमय अमृतरस [चित्‌रस] हो सेंचने वाली प्रसर करती हैं ॥ ३ ॥

यन्नित्ये तव कामराजमपरं मन्त्राक्षरं निष्कलम्
तत्सारस्वतमित्यवैति विरलः कश्चिद्बुधश्चेद्भुवि ।
आख्यानं प्रतिपर्व सत्यतपसो यत्कीर्तयन्तो द्विजाः
प्रारम्भे प्रणवास्पद प्रणयितां नीत्वोच्चरन्ति स्फुटम् ॥४॥

पदच्छेदः

यत् नित्ये ! तव कामराजम् अपरं मन्त्र अक्षरं निष्कलम्
तत् सारस्वतम् इति अवैति विरलः कश्चिद् बुधः चेत् भुवि ।
आख्यानं प्रतिपर्व सत्य तपसः यत् कीर्तयन्तः द्विजाः
प्रारम्भे प्रणव आस्पद प्रणयितां नीत्वा उच्चरन्ति स्फुटम् ॥ ४ ॥

(हे) नित्ये	— हे अविनाशी	विरला	— (वह) विरला भी[1]
यत् तव	— जो तुम्हारा	बुधः	— ज्ञानवान (बन जाता है)
अपरं	— दूसरा (क्लीं)	यत्	— जिस (बीज अक्षर) को
निष्कलं	— कलना रहित (क् ल् रहित)	द्विजाः	— ब्राह्मण
कामराज	— अभिलाषा पूरा करने वाला (कामराज)	प्रतिपर्व	— हर एक पर्व पर
		सत्यतपसो	— सत्यतपस नामी

१. मूर्ख अथवा बालक भी

मंत्राक्षरम्	— मंत्र अक्षर (ईं) है
तत्	— उस
सारस्वतम्	— सरस्वती के (मंत्र अक्षर को)
इति	— इस प्रकार
चेत्	— अगर
कश्चित्	— कोई
भुवि	— संसार में
अवैति	— जाने

आख्यानं	— ऋषि का नाम लेकर
कीर्तयन्तः	— कीर्तन करते हैं
प्रारम्भे	— [और]आरम्भ में
प्रणवास्पद	— ओंकार के स्थानके
प्रणयितां	— सम्बन्ध भाव को
नीत्वा	— ले जाकर (इस बीज अक्षर का)
स्फुटम्	— स्फुट प्रकार से
उच्चरन्ति	— उच्चारण करते हैं

यत्सद्यो वचसां प्रवृत्तिकरणे दृष्टप्रभावं बुधैः
तार्तीयीकमहं नमामि मनसा त्वद्बीजमिन्दु प्रभम् ।
अस्त्वौर्वोपि सरस्वतीमऽनुगतो जाड्याम्बु विच्छित्तये
गौशब्दो गिरि वर्तते सनियतं योगं विना सिद्धिदः ॥५॥

पदच्छेदः

यत् सद्यः वचसां प्रवृत्तिकरणे दृष्टप्रभावं बुधैः
तार्तीयीकम् अहं नमामि मनसा त्वत् बीजम् इन्दु प्रभम् ।
अस्तु और्वः अपि सरस्वतीम् अनुगतः जाडयअम्बु विच्छित्तये
गो शब्दः गिरि वर्तते स नियतं योगं विना सिद्धिदः ॥५॥

यत्	— जो (बीजअक्षर)
सद्यः	— तत्क्षणात्
वचसाम्	— वाणियों को
प्रवृत्तिकरणे	— प्रवृत करने में

औवोंऽपि	— [क] वाडव अग्नि भी[1] [ख]औ बीज तुम्हें भी
जाडयाम्बु	— अज्ञारूपी जलों को

१. ज्ञानरूपी अग्नि जो सभी भेद रूपी अज्ञान को नाश करता है।

बुधैः — बुद्धिमानों से
इष्टप्रभावम् — देखे प्रभाव वाला है
अहं — मैं
त्वत — [उस] तुम्हारे
इन्दुप्रभम् — चन्द्रमा की दीप्ति वाले
तार्तीयीकम् — तीसरे अर्थात 'सौः'
बीजम् — बीज अक्षर को
मनसा — मन से
नमामि — नमस्कार करता हूं
सरस्वती — सरस्वती के
अनुगतो — पीछे गया हुआ[1]

विच्छित्तये — सुखाने के लिए
अस्तु — [समर्थ] हो ।
स गौ शब्दो — वह गौ शब्द
गिरि — वाणी के अर्थ में
वर्तते — प्रवर्तन होता है
नियतं — [और] अवश्य ही
[क]योगं विना— योग के विना
[ख]यो गं विना— जो [बीज अक्षर] गकार के विना [अर्थात् औं बीज अक्षर]
सिद्धिदः — सिद्धि को देने वाला है ।

एकैकं तवदेवि बीजमनघं सव्यञ्जनाऽव्यञ्जनं,
कूटस्थं यदि वा पृथक् क्रमगतं यद्वा स्थितं व्युत्क्रमात् ।
यं यं काममपेक्ष्य येन विधिना केनापि वा चिन्तितं,
जप्तं वा सफली करोति सहसा तं तं समस्तं नृणाम् ।। ६।।

पदच्छेदः

एक एकं तव देवि ! बीजम् अनघं सव्यञ्जन अव्यञ्जनं
कूटस्थं यदि वा पृथक् क्रमगतं यद्वा स्थितं व्युत्क्रमात् ।
यं यं कामम् अपेक्ष्य येन विधिना केन अपि वा चिन्तितं
जप्तं वा सफली करोति सहसा तं तं समस्तं नृणाम् ।। ६ ।।

---

१. ज्ञानरूपी अग्नि जो सभी भेद रूपी अज्ञान को नाश करता है ।

देवि ! — हे देवी !
तव — तुम्हारा
एकैकं — प्रत्येक
अनघं — दोषरहित
बीजं — बीज अक्षर
सव्यंजन — व्यंजन सहित
अव्यंजनं — [या] व्यंजन रहित
कूटस्थं — [या] कूटस्थ[1] बीज में ठहरा हुआ
यदि वा — या
पृथक क्रमगतं — पृथक क्रम[2] में गया हुआ
यद्वा — या
व्युत्क्रमात् — उल्टे क्रम से[3]
स्थितं — ठहरा

यं यं — जिस
कामं — अभिलाषा की
अपेक्षा — अपेक्षा करके
येन केनापि — किसी भी[4]
विधिना — विधि से
चिन्तितं — चिन्तत
जप्तवा — या जप किया हुआ
नृणाम् — मनुष्यों की
तं तं — उस उस
समस्तं — सभी [अभिलाषाओं को]
सहसा — तत्क्षणात्
सफली — सफल
करोति — करता है।

वामे पुस्तक धारिणीमऽभयदां साक्षस्रजं दक्षिणे
भक्तेभ्यो वरदानपेशलकरां कर्पूर कुन्दो ज्ज्वलाम् ।
उज्जृम्भाम्बुजपत्रकान्तनयन स्निग्ध प्रभा लोकिनीं
येत्वामऽम्ब न शीलयन्ति मनसा तेषां कवित्वं कुतः ॥७॥

पदच्छेदः

वामे पुस्तक धारिणीम् अभयदां साक्षस्रजं दक्षिणे
भक्तेभ्यो वरदानपेशलकरां कर्पूरकुन्द उज्ज्वलाम् ।
उज्जृम्भ अम्बुजपत्र कान्तनयन स्निग्धप्रभा लोकिनीम्
ये त्वाम् अम्ब! न शीलयन्ति मनसा तेषा कवित्वं कुतः ॥ ७ ॥

---

१. जैसे ऐं, ओं। २. क्रम से। ३. अक्रम से। ४. क्रमाक्रम से।

अम्ब !	— हे माता !
ये	— जो
त्वाम्	— तुम्हारा
वामे	— बाईं हाथ में
पुस्तक	— पुस्तक
धारिणीं	— धारण करती हुई
दक्षिणे	— दायें हाथ में
साक्षस्रजं	— जप माला धारण करती हुई
भक्तेभ्यो	— भक्तों को
वरदान	— वर देने के लिये
पेशलकरां	— कोमल हाथ वाली
कर्पूरकुन्द	— कर्पूर और कुन्द पुष्प की भांति
उज्ज्वलां	— दीप्तिमान
उज्जृम्भ	— विकसित
अम्बुज	— कमल के
पत्र	— पत्ते जैसी
कान्त	— सुन्दर
नयनं	— नेत्रों की
स्निग्ध	— मन मोहक
प्रभा	— दीप्ति से
आलोकिनीं	— देखती हुई
अभयदां	— [जन्म मरण का]* भय हटाती हुई [का]
मनसा	— मन से
न शीलयन्ति	— अभ्यास नहीं करते हैं
तेषाम्	— उन [अज्ञानियों] को
कवित्वं	— सर्वज्ञता
कुतः ?	— कहां मिल सकती है ? अर्थात् नहीं मिल सकती है।

ये त्वां पाण्डुर पुण्डरीक पटल स्पष्टाभिराम प्रभां
सिञ्चन्तीमऽमृतद्रवैरिव शिरो ध्यायन्ति मूर्ध्नि स्थिताम्।
अश्रान्तं विकट स्फुटाक्षर पदा निर्यान्ति वक्त्राम्बुजात्
तेषां भारति ! भारती सुरसरि त्कल्लोललोलोर्मिवत् ॥८॥

पदच्छेदः

---

*इस ध्यान में देवी का चतुर्भुज ध्यान है, और उसके हाथों में पुस्तक अक्षमाला, वर और अभय दिखाये गये हैं।

ये त्वां पाण्डुर पुण्डरीक पटल स्पष्ट अभिराम प्रभां
सिञ्चन्तीम् अमृतद्रवैः इव शिरो ध्यायन्ति मूर्ध्नि स्थिताम् ।
अश्रान्तं विकट स्फुट अक्षर पदा निर्यान्ति वक्त्र अम्बुजात्
तेषां भारति ! भारती सुरसरित् कल्लोल लोल उर्मिवत् ॥ ८ ॥

भारति !	— हे सरस्वती !	स्थिताम्	— ठहरी हुई [का]
ये	— जो भक्त	ध्यायन्ति	— ध्यान करते हैं
त्वाम्	— तुम्हारा	तेषां	— उनके
पाण्डुर	— सफेद	वक्त्र	— मुख
पुण्डरीक	— कमल के	अम्बुजात्	— कमल से
पटल	— समूह जैसे	विकट	— बडे [गम्भीर]
स्पष्ट	— निर्मल [तथा]	स्फुट	— स्पष्ट
अभिराम	— सुन्दर	अक्षरपदा	— अक्षर और पदों वाली
प्रभां	— दीप्तिवाली	भारती	— वाणी
अमृतद्रवैः	— मानो अमृत के प्रवाहों से	सुरसरित्	— आकाश गंगा की
शिरः	— सिर को अर्थात् द्वादशान्त को	कल्लोललोल	— चञ्चल
सिञ्चन्तीम्	— सींचती हुई	ऊर्मिवत्	— तरंगों की तरह
मूर्ध्नि	— ललाट में	अश्रान्त	— निरन्तर
		निर्याति	— निकलती है ।

ये सिन्दूर पराग पुञ्जपिहितां त्वत्तेजसा द्यामिमाम्
उर्वीं चापि विलीन यावकरस प्रस्तार मग्नामिव ।
पश्यन्ति क्षणमप्यनन्य मनस स्तेषामनङ्गज्वर
क्लान्तास्त्रस्तकुरङ्ग शावक दृशो वश्या भवन्ति स्फुटम् ॥९॥

पदच्छेदः

ये सिन्दूर पराग पुञ्जपिहितां त्वत् तेजसा द्याम् इमाम्
उर्वीं च अपि विलीन यावकरस प्रस्तार मग्नाम् इव ।
पश्यन्ति क्षणम् अपि अनन्यमनसस्तेषाम् अनङ्ग ज्वर-
क्लान्ताः त्रस्तकुरङ्ग शावकदृशः वश्याः भवन्ति स्फुटम् ॥ ९ ॥

ये	— जो [भक्त]	तेषां	— उन
त्वत्	— तुम्हारे	अनन्यमनसः	— एकाग्र मन वाले
तेजसा	— तेज से		[भक्तों को]
द्यां	— आकाश को	अनङ्ग	— काम देव के
सिन्दूर	— सिन्दूर की	ज्वर	— सन्ताप से
पराग	— धूलि के	क्लान्ताः	— पीडित
पुञ्ज	— समूह से	त्रस्त	— डरे हुए
पिहितां	— छिपा हुआ	कुरंग	— हिरण के
उर्वींचापि	— और पृथ्वी को भी	शावक	— बच्चों [की जैसी]
विलीन	— पिघले हुए	दृशः	— आंखों वाली
यावकरस	— लाक्षारस के[1]		[सुन्दर शक्तियां]
प्रस्तार	— विस्तार में	स्फुटं	— प्रत्यक्ष रूप में
मग्नां इव	— डूबी हुई जैसी	वश्या	— वश
क्षणम् अपि	— एक क्षण भी	भवन्ति	— हो जाती हैं ।
पश्यन्ति	— देखते हैं		

चञ्चत्काञ्चन कुण्डलाङ्गदधरामाऽऽबद्धकाञ्ची स्रजं
ये त्वां चेतसि तद्गतेक्षणमपि ध्यायन्ति कृत्वा स्थितिम्।
तेषां वेश्मसु विभ्रमादऽहरहः स्फारी भवन्त्य शिचरं
माद्यत्कुञ्जर कर्णताल तरलः स्थैर्यं भजन्ते श्रियः ॥१०॥

पदच्छेदः

---

१. कश्मीरी में ओलुत ।

चञ्चत् काञ्चन कुण्डल अङ्गद धराम् आबद्धकाञ्चीस्रजं
ये त्वां चेतसि तद्गते क्षणम् अपि ध्यायन्ति कृत्वा स्थितिम् ।
तेषां वेश्मसु विभ्रमाद् अहः अहः स्फारी भवन्त्यः चिरम्
माद्यत् कुञ्जर कर्णताल तरलाः स्थैर्यं भजन्ते श्रियः ॥१०॥

ये	— जो (भक्त)	ध्यायन्ति	— ध्यान करते हैं
चंचत	— चमकते हुए	तेषा	— उन (भक्तों) के
कांचन	— सोने के	वेश्मसु	— घरों में
कुंडल	— बालियों (और)	अहरहः	— सदा
अंगद	— बाजूबन्दों को	स्फारी	— विकास में
धराम्	— धारण किये हुए	भवन्त्यः	— आती हुई
काञ्ची	— सोने की	माद्यत्	— मस्त
स्रजं	— तागडी	कुंजर	— हाथी के
आबद्ध	— पहने हुये	कर्णताल	— कनपुटी जैसी
त्वां	— तुम्हारे (स्वरूप का)	तरलाः	— चञ्चल
तद्गते	— उसी (तुम्हारे स्वरूप में) लगे हुए	श्रियः	— शक्तियां
		विभ्रमात्	— विवश होकर
चेतसि	— मन में	चिर	— चिर काल तक
क्षणमपि	— एक क्षण भी	स्थैर्यं	— स्थिरता को
स्थिति	— एकाग्रता पूर्वक	भजन्ते	— सेवन करती हैं।

आर्भट्या शशिखण्ड मण्डित जटाजूटां नृमुण्ड स्रजं
बन्धूक प्रसवा रुणाम्बरधरां प्रेतासना ध्यासिनीम्।
त्वां ध्यायन्ति चतुर्भुजां त्रिनयनामाऽऽपीन तुङ्गस्तनीं
मध्ये निम्नवलि त्रयाङ्कित तनुं त्वद्रूप संवित्तये॥११॥

पदच्छेदः

आभंटचा शशिखण्डमण्डित जटाजूटां नृमुण्डस्रजं
बन्धूक प्रसवअरुणअम्बरधरां प्रेत आसन अध्यासिनीम् ।
त्वां ध्यायन्ति चतुर्भुजां त्रिनयनाम् आपीन तुङ्गस्तनीम्
मध्ये निम्न वलि त्रय अङ्कितततनुं त्वत्‌रूप संवित्तये ।। ११ ।।

आभंटचा — वीरवृत्ति
शशिखण्ड — चन्द्रकला से
मंडित — सुशोभित
जटाजूटां — जटाजूट वाली
नृमण्ड — मनुष्य की खोपडी की
स्रजं — मालाधारी
बन्धूकप्रसव — बन्धूक पुष्प जैसे
अरुण — लाल
अम्बरधरां — वस्त्र धारण किये हुए
प्रेतासन — प्रेतरूप आसन पर
अध्यासिनी — बैठने वाली
चतुर्भुजां — चार भुजाओं वाली
त्रिनयनां — तीन नेत्रों वाली[1]

आपीन — बडे
तुङ्ग — मोटे
स्तनीं — स्तनों वाली[2]
मध्ये — मध्य भाग में
निम्न — सूक्ष्म (गहरे)
वलित्रय — तीन रेखाओं[3] के
अंकित — चिह्न वाले (ऐसे)
तनुं — स्वरूप का
त्वत् — तुम्हारे
रूप — स्वरूप के
संवित्तये — जानने के लिये (भक्तजन)
त्वां — तुम्हें
ध्यायन्ति — विमर्श करते हैं ।

जातोऽप्यऽल्प परिच्छदे क्षितिभुजां सामान्य मात्रे कुले
निःशेषावनि चक्रवर्ति पदवीं लब्ध्वा प्रतापोन्नतः ।
यद्विद्याधर वृन्दवन्दित पदः श्रीवत्सराजोऽभवत्
देवि ! त्वच्चरणाम्बुज प्रणतिजः सोऽयं प्रसादोदयः।। १२।।

---

१. तीन नेत्र–सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि । २. माता की भांति जगत् को आप्यायन और आप्लावन देने वाली । ३. तीन वलि–इच्छा, ज्ञान, तथा क्रिया ।

पदच्छेदः

जातः अपि अल्पपरिच्छदे क्षितिभुजां सामान्यमात्रे कुले
निःशेषअवनि चक्रवर्ति पदवीं लब्ध्वा प्रताप उन्नतः ।
यत् विद्याधर वृन्दवन्दितपदः श्रीवत्सराजः अभवत्
देवि ! त्वत् चरण अम्बुज प्रणतिजः स अयं प्रसाद उदयः ॥१२॥

देवि !	— हे देवी !	विद्याधर	— विद्याधरों के
क्षितिभुजां	— क्षत्रियों के	वृन्द	— समूह से–
सामान्यमात्रे	— अति साधारण	वन्दित	— पूजे हुए
कुले	— कुल (और)	पदः	— चरणों वाला
अल्प	— छोटे	यत्	— जो
परिच्छदे	— वंश में	श्रीवत्सराजः	— श्रीवत्सराज
जातः	— उत्पन्न हुआ	अभवत्	— था (उसको)
अपि	— भी	सोऽयं	— वही यह
निःशेष	— सारी	प्रसाद	— प्रसाद का
अवनि	— पृथ्वी के	उदयः	— उदय
चक्रवर्ति	— चक्रवर्ती	त्वत्	— तुम्हारे
पदवीं	— पदवी को	चरण	— चरण
लब्ध्वा	— पाकर	अम्बुज	— कमलों के
उन्नतः	— ऊँचे	प्रणितजः	— प्रणाम से उत्पन्न
प्रताप	— प्रताप वाला		हुआ था ।

चण्डि ! त्वच्चरणाम्बुजार्चन विधौ बिल्वीदलोल्लुण्ठन
त्रुट्यत्कण्टक कोटिभिः परिचयं येषां न जग्मुः कराः ।
ते दण्डाङ्कुश चक्र चाप कुलिश श्रीवत्स मत्स्याङ्कितैः
जायन्ते पृथिवीभुजः कथमिवाम्भोज प्रभैः पाणिभिः ।१३।

चण्डि ! त्वत् चरण अम्बुज अर्चन विधौ बिल्वीदल उल्लुण्ठन-
त्रुटचत् कण्टक कोटिभिः परिचयं येषां न जग्मुः कराः ।
ते दण्ड अङ्कुश चक्र चाप कुलिश श्रीवत्स मत्स्य अङ्कितैः
जायन्ते पृथिवीभुजः कथम् इव अम्भोज प्रभैः पाणिभिः ॥१३॥

चण्डि !	— हे चण्डी !	जग्मुः	— प्राप्त हुए[1]
त्वत्	— तुम्हारे	ते	— वह (अभक्त)
चरण	— चरण	दंड	— दंड
अम्बुज	— कमलों की	आंकुश	— आंकस[2]
अर्चन	— पूजा की	चक्र	— चक्र
विधौ	— विधि में	चाप	— धनुष
येषां	— जिन (अभक्तों) के	कुलिश	— कुल्हाडी
कराः	— हाथ	श्रीवत्स	— श्रीवत्स रत्न
विल्वीदल	— विल्वपत्र के	मत्स्य	— [और] मछली के
उल्लुण्ठन	— तोडने से	अंकितैः	— चिह्नों वाले[3]
त्रुटचत्	— चुभते हुए	अम्बोजप्रभैः	— कमल जैसे
कोटिभिः	— करोडों	पाणिभिः	— हाथों से युक्त
कंटक	— कांटों से	पृथिवीभुजः	— चक्रवर्ती राजा
परिचयं	— अभ्यास को	कथ इव	— किस प्रकार.
न	— नहीं	जायन्ते	— बन सकते हैं ?

विप्राः क्षोणिभुजो विशस्तदितरे क्षीराज्यमध्वासवैः
त्वां देवि ! त्रिपुरे ! पराऽपरमयीं सन्तर्प्य पूजाविधौ ।

---

१. जिन्होंने देवी की पूजा के लिए कष्ट सहे उनको ही चक्रवर्ती राजा बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। अभक्त ऐसा फल प्राप्त नहीं कर सकते हैं। २. कश्मीरी में टोंग।

३. सामुद्रिक शास्त्रों की दृष्टि से दण्ड, अंकुश आदि के आकार हाथ पर होने चक्रवर्ती राजा बनने के लक्षण हैं।

यां यां प्रार्थयते मनःस्थिरधियां तेषां त एव ध्रुवं
तां तां सिद्धिमवाप्नुवन्ति तरसा विघ्नैरविघ्नी कृतः ।१४।

पदच्छेदः

विप्राः क्षोणिभुजः विशः तत् इतरे क्षीर आज्य मधु आसवैः
त्वां देवि ! त्रिपुरे ! पर अपरमयीं सन्तर्प्य पूजाविधौ ।
यां यां प्रार्थयते मनः स्थिरधियां तेषां ते एव ध्रुवं
तां तां सिद्धिम् अवाप्नुवन्ति तरसा विघ्नैः अविघ्नी कृताः ।।१४।।

देवि ! त्रिपुरे!	— हे क्रीडनशील त्रिपुरा देवी !
विप्राः	— ब्राह्मण
क्षोणिभुजो	— क्षत्रिय
विशः	— वैश्य (और)
तत् इतरे	— इनके अतिरिक्त [जीवन मुक्त]
क्षीर	— दूध
आज्य	— घी
मधु	— शहद [और]
आसवैः	— चित् रस से
त्वां	— तुझ
परापरमयीं	— स्थूल और सूक्ष्म रूप देवी को
पूजाविधौ	— पूजा की विधि में
संतर्प्य	— [तुझ को] तृप्त करके
तेषां	— उन
स्थिरधियां	— अटल बुद्धि वालों का
मनः	— मन
यां यां	— जिस जिस
सिद्धि	— सिद्धि को
प्रार्थयते	— प्रार्थना करता है
तां तां	— उस २ [सिद्धि को]
ते	— वह [भक्त]
ध्रुवं एव	— निश्चय करके ही
विघ्नैः	— सब विघ्नों से
अविघ्नी	— निर्विघ्न
कृताः	— होकर
आप्नुवन्ति	— प्राप्त करते हैं ।

शब्दानां जननी त्वमत्र भुवने वाग्वादिनी त्युच्यसे
त्वत्तः केशव वासव प्रभृतयोऽप्याविर्भवन्ति स्फुटम् ।

लीयन्ते खलु यत्र कल्पविरमे ब्रह्मादयस्तेप्यमी
सा त्वं काचिदऽचिन्त्यरूपमहिमा शक्तिः परा गीयसे।१५।

पदच्छेदः

शब्दानां जननी त्वम् अत्र भुवने वाक् वादिनी इति उच्यसे
त्वत्तः केशववासव प्रभृतयः अपि आविर्भवन्ति स्फुटम् ।
लीयन्ते खलु यत्र कल्पविरमे ब्रह्मा आदयः ते अपि अमी
सा त्वं काचित् अचिन्त्यरूप महिमा शक्तिः परा गीयसे ।। १५ ।।

त्वं	— तुम	ते अमी	— वही यह
अत्र	— इस	ब्रह्मादयः	—ब्रह्मा [विष्णु] इत्यादि[2]
भवने	— जगत् में	अपि	— भी
शब्दानां	— सभी शब्दों की	कल्प	— कल्प के
जननी	— उत्पन्न करने वाली	विरमे	— अंत में
वाग्वादिनी	— वाणियों की[1] उच्चारण करने वाली	यत्र	— जिस [तुम्हारे स्वरूप] में
		खलु	— निश्चय करके
इति	— इस नाम से	लीयन्ते	— लय हो जाते हैं
उच्यते	— कहलाती हो।	सात्वम्	— वही तुम
केशव	— विष्णु	काचित्	— कोई [अलौकिक]
वासव	— इन्द्र	अचिन्त्य	— चिन्तन से अतीत
प्रभृतयः	— इत्यादि	रूप	— रूप [और]

---

१. चार प्रकार की वाणियां परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी हैं। यह सब परा शक्ति का ही प्रसर है और इसी से सारी सूक्ष्म, स्थूल सृष्टि की उत्पत्ति है।

२. ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र जो सृष्टि, स्थिति और संहार के अधिकारी हैं शक्ति से ही निकलते हैं और उसी में लय हो जाते हैं।

अपि — भी
त्वतः — तुम से ही
आविर् — प्रकट
भवन्ति — होते हैं।

महिमा — महिमा वाली
परा शक्तिः — परा [उत्कृष्ट] शक्ति
गीयसे — गाई जाती हो।

देवानां त्रितयं त्रयी हुतभुजां शक्तित्रयं त्रिस्वरा
स्त्रैलोक्यं त्रिपदी त्रिपुष्करमथो त्रिब्रह्म वर्णास्त्रयः।
यत्किञ्चज्जगति त्रिधा नियमितं वस्तु त्रिवर्गात्मकं
तत्सर्वं त्रिपुरीति नाम भगवत्यन्वेति ते तत्त्वतः॥१६॥

पदच्छेदः

देवानां त्रितयं त्रयी हुतभुजां शक्तित्रयं त्रिस्वराः
त्रैलोक्यं त्रिपदी त्रिपुष्करम् अथो त्रिब्रह्म वर्णाः त्रयः।
यत् किंचित् जगति त्रिधा नियमितं वस्तु त्रिवर्ग आत्मकम्
तत् सर्वं त्रिपुरा इति नाम भगवति ! अन्वेति ते तत्त्वतः॥१६॥

भगवति ! — हे भगवती !
देवानां त्रितयं — तीन देवता (ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र)
हुतभुजां त्रयी — तीन अग्नि (गार्हस्थ हवन, शमशान)
शक्ति त्रयं — तीन शक्तियां (इच्छा, ज्ञान, क्रिया)
त्रिस्वराः — तीन स्वर (अ, इ, उ) [उदात, अनुदात, स्वरित]
त्रैलोक्यं — तीन लोक [भूः, भवः, स्वः] [परा, शक्ति, शिव] [इडा, पिंगला, सुषुम्ना]

त्रयः वर्णाः — तीन वर्ण [ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य]
जगति — जगत में
यत् — जो
किंचित् — कोई भी
वस्तु — पदार्थ
त्रिधा — तीन प्रकार से
नियमितं — नियम में बांधा गया है।

	परापरा, अपरा]
त्रिपदी	— तीन पद [गायत्री, जालंधर, कामरूप]
त्रिपुष्करम्	— तीन जल [नाभि, हृदय, ललाट]
अथो	— और
त्रिब्रह्म	— तीन ब्रह्म [नर,
तत्सर्वं	— वह सब ही
तत्त्वतः	— वास्तवता से
ते	— तुम्हारे
त्रिपुरा	— त्रिपुरा
इति	— ऐसे
नाम	— नाम का
अन्वेति	— अनुसरण करते हैं।

लक्ष्मीं राजकुले जयां रणभुवि क्षेमङ्करी मध्वनि
क्रव्याद द्विप सर्प भाजि शवरीं कान्तार दुर्गे गिरौ।
भूत प्रेत पिशाच जम्बुक भये स्मृत्वा महा भैरवीं
व्यामोहे त्रिपुरां तरन्ति विपदस्तारां च तोयप्लवे ॥१७॥

पदच्छेदः

लक्ष्मीं राजकुले जयां रणभुवि क्षेमङ्करीम् अध्वनि
क्रव्याद द्विपसर्पभाजिशवरीं कान्तार दुर्गे गिरौ।
भूतप्रेत पिशाचजम्बुकभये स्मृत्वा महाभैरवीम्
व्योमोहे त्रिपुरां तरन्ति विपदः तारां च तोयप्लवे ॥ १७ ॥

राजकुले	— राजकुल में
लक्ष्मीं	— लक्ष्मी का
रणभुवि	— युद्ध क्षेत्र में
जयां	— जया रूप का
क्रव्याद	— शेर
द्विपः	— हाथी
सर्प भाजि	— सांपों से भरे
अध्वनि	— मार्ग में
क्षेमंकरीम्	— क्षेमंकरी [कल्याण
पिशाच	— पिशाच [और]
जम्बुक	— गीदड इत्यादि के
भये	— भय में
महाभैरवी	— महा भैरवी रूप का
व्यामोहे	— बडे भय में
त्रिपुरां	— त्रिपुरा रूप का
तोय	— जल के
प्लवे	— बाढ में
तारां	— [तुम्हारे] तारारूप

	कारिणी] का
कांतार	— कठिन
दुर्ग	— दुर्गम
गिरौ	— पहाड पर
शवरीं	— शवरी रूप का
भूत प्रेत	— भूतप्रेत

	[तारने वाली] का
स्मृत्वा	— स्मरण करके (भक्त)
विपदः	— आपदाओं को
तरन्ति	— पार करते हैं। [अर्थात् आपदाओं से छुटकारा पाते हैं]

माया कुण्डलिनी क्रिया मधुमती काली कला मालिनी
मातङ्गी विजया जया भगवती देवी शिवा शाम्भवी।
शक्तिः शङ्करवल्लभा त्रिनयना वाग्वादिनी भैरवी
ह्रींकारी त्रिपुरा परापरमयी माता कुमारीत्यसि॥१८॥

पदच्छेद

माया कुण्डलिनी क्रियामधुमती काली कला मालिनी
मातङ्गी विजया जया भगवती देवी शिवा शाम्भवी।
शक्तिः शङ्कर वल्लभा त्रिनयना वाक् वादिनी भैरवी
ह्रींकारी त्रिपुरा पर अपर मयी माता कुमारी इति असि॥१८॥

माया	— स्वातंत्र्य शक्ति
कुंडलिनी	— मूलाधार शक्ति
क्रिया	— क्रिया शक्ति
मधुमती	— आनन्द शक्ति
काली	— सृष्टि, स्थिति, संहार शक्ति
कला	— अमृतमय अमा कला
मालिनी	— आदि क्षान्त वर्ण

वल्लभा	— प्रिया
त्रिनयना	— (सूर्य, चन्द्र, अग्नि रूप) तीन नेत्रों वाली
वाग्वादिनी	— परा आदि वाणी रूप विमर्शमय
भैरवी	— (भरन, रवन, वमन करने वाली) भैरव की शक्ति

	— माला शक्ति	ह्रींकारी	— ह्रींकार रूप (माया बीज)
मातंगी	— मतंग ऋषि की कन्या	त्रिपुरा	— इडा, पिंगला, सुषम्ना रूप
विजया जया	— विजय जय रूप	परापरमयी	— स्थूल सूक्ष्म रूप
भगवती	— सर्व ऐश्वर्य मयी	माता	— जगत् जननी
देवी	— क्रीडन शील	कुमारी	— भेद को नष्ट करने वाली
शिवा	— कल्याण रूप	इति	— इन इन नामों से
शाम्भवी शक्ति	— शंभु की अभिन्न शक्ति	असि	— तुमही हो।
शंकर	— शंकर की		

आई पल्लवितैः परस्परयुतै द्वित्रि क्रमाद्यक्षरैः
काद्यैः क्षान्तगतैः स्वरादिभिरथो क्षान्तैश्च तैः सस्वरैः।
नामानि त्रिपुरे! भवन्ति खलु यान्यत्यन्त गुह्यानि ते
तेभ्यो भैरव पत्नि विंशति सहस्रेभ्यः परेभ्यो नमः ॥१९॥

पदच्छेदः

आई पल्लवितैः परस्परयुतैः द्वि त्रि क्रम आदि अक्षरैः
कआद्यैः क्षअन्त गतैः स्वर आदिभिः अथो क्षअन्तैः च तैः सस्वरैः।
नामानि त्रिपुरे! भवन्ति खलु यानि अत्यन्त गुह्यानि ते
तेभ्यः भैरवपत्नि! विंशति सहस्रेभ्यः परेभ्यः नमः ॥१९॥

त्रिपुरे!	— हे त्रिपुरा देवी!	यानि	— जो
आई पल्लवितैः	— आ और ई से लेकर प्रसर में आये हुये	अत्यन्त	— बहुत ही
		गुह्यानि	— रहस्य
परस्परयुतैः	— आपस में मिले हुये	नामानि	— नाम
कादयैः	— क से लेकर	ते	— तुम्हारे
क्षान्तगतैः	— क्ष तक	खलु	— निश्चय करके

ई + क + आ

क्रमाद्यक्षरैः	— क्रम के अक्षरों से	भवन्ति	— बनते हैं
स्वरादिभिः	— आदि में स्वर रख कर	भैरवपत्नि	— हे भैरव की शक्ति
अथ	— फिर	तेभ्यः	— उन सब
क्षान्तैः च	— क्ष जिनके अन्त में है	विंशति-सहस्रेभ्यः	— बीस हज़ार से भी
तैः	— उन (क से क्ष तक)	परेभ्यः	— अधिक (नामों को)
सस्वरैः	— स्वरों सहित (अक्षरों से)	नमः	— नमस्कार हो।

बोद्धव्या निपुणं बुधैः स्तुतिरियं कृत्वा मनस्तद्गतं
भारत्या त्रिपुरेत्यनन्य मनसो यत्राद्यवृते स्फुटम् ।
एक द्वित्रिपद क्रमेण कथितस्तत्पाद संख्याक्षरैः
मन्त्रोद्धार विधि विशेष सहितः सत्संप्रदायान्वितः ॥२०॥

पदच्छेदः

बोद्धव्या निपुणं बुधैः स्तुतिः इयं कृत्वा मनः तद्गतं
भारत्याः त्रिपुराइति अनन्यमनसः यत्र आद्यवृते स्फुटम् ।
एकद्वि त्रिपद क्रमेण कथितः तत्पाद संख्या अक्षरैः
मन्त्र उद्धार विधिः विशेष सहितः सत्सप्रदाय अन्वितः ॥२०॥

इयं	— यह	आद्यवृत्ते	— पहले ही श्लोक में
भारत्याः	— [सरस्वती] भगवती की	एकद्वि त्रि	— पहले दूसरे और तीसरे
स्तुतिः	— स्तुति	पदक्रमेण	— पदों के क्रम से
बुधैः	— ज्ञानवानों को	तत्	— उस [श्लोक] के
निपुणं	— [अपने] तीक्ष्ण	पाद	— पादों की
मनः	— मन को	सांख्याक्षरैः	— गिनती के अक्षरों

तद्गतं कृत्वा	— उसी [देवी में] एकाग्र करके		के अनुस्वार
अनन्य मनसा	— [और] न किसी में लगाये हुए मन से	विशेषसहितः	— विशेषता के सहित
	[यह विमर्श करते हुए कि]	सत्संप्रदाय	— परमार्थ सम्प्रदाय अथवा गुरु क्रम से
त्रिपुराइति	— त्रिपुरा देवी ही [सब का कारण है]	अन्वितः	— युक्त
बोद्धव्या	— जाननी चाहिए	मंत्रोद्धार	— मंत्र के निकालने का
यत्र	— जिस स्तुति में	विधिः	— ढंग
		स्फुटम्	— प्रकट रूप से
		कथितः	— कहा है।

सावद्यं निरवद्यमस्तु यदि वा किं वा नया चिन्तया
नूनं स्तोत्रमिदं पठिष्यति नरो यस्यास्ति भक्ति स्त्वयि।
सञ्चिन्त्यापि लघुत्वमात्मनि दृढं सञ्जायमानं हठात्
त्वद्भक्त्या मुखरीकृतेन रचितं यस्मान्मयापि स्फुटम्।२१।

पदच्छेदः

स अवद्यं निर् अवद्यम् अस्तु यदि वा किं वा अनया चिन्तया
नूनं स्तोत्रम् इदं पठिष्यति नरः यस्य अस्ति भक्तिः त्वयि ।
सञ्चिन्त्य अपि लघुत्वम् आत्मनि दृढं सञ्जायमानं हठात्
त्वत् भक्त्या मुखरी कृतेन रचितं यस्मात् मया अपि स्फुटम् ।२१।

अनया	— इस	त्वत	— तुम्हारी
चिन्तया	— चिन्ता से	भक्त्या	— भक्ति से
किं ?	— क्या (लाभ है) ?	मुखरी कृतेन	— वाचाल बने हुये[1]

१. दूसरा अर्थ – तीक्ष्ण विमर्श युक्त

सावद्यं — (चाहे) दोष सहित
यदि वा — अथवा
निरवद्यं — दोष रहित
अस्तु — (यह स्तुति) हो
यस्य — जिस पुरुष की
त्वयि — तुझ में
भक्ति — भक्ति
अस्ति — है
(स) नरः — (वह) मनुष्य
इदं — इस
स्तोत्रं — स्तोत्र को
नूनं — अवश्य
पठिष्यति — पढेगा (विमर्श करेगा)
यस्मात् — क्योंकि

मया अपि — मैंने भी
आत्मनि — अपने आप में
ध्रुवं — निश्चय करके
दृढं — दृढ़ता से
संजायमानं — उत्पन्न हुए
लघुत्वं — अल्पभाव को[1]
संचित्य — विचार करके (विमर्श करके)
अपि — भी
हठात् — हठ से
स्फुटं — (और) स्फुट भाव से
रचितम् — [इस स्तोत्र की] रचना की।

---

१. दूसरा अर्थ — हलकापन अर्थात् शरीर, प्राण इत्यादि के अभिमान रहित।

मु
मु
मु
महिप

ॐ

अथ चर्चस्तवो द्वितीयः ॥

नमस्त्रिपुरसुन्दर्यै

आनन्दसुन्दरपुरन्दरमुक्तमाल्यं
मौलौ हठेन निहितं महिषासुरस्य ।
पादाम्बुजं भवतु मे विजयाय मञ्जु-
मञ्जीरशिञ्जितमनोहरमम्बिकायाः ॥१॥

पदच्छेदः

आनन्द सुन्दर पुरन्दर मुक्त माल्यं
मौलौ हठेन निहितं महिषासुरस्य ।
पाद अम्बुजं भवतु मे विजयाय मञ्जु
मञ्जीर शिञ्जित मनोहरम् अम्बिकायाः ॥१॥

आनन्द- — आनन्द देने के कारण
सुन्दर- — सुन्दर प्रसन्न बने हुए
पुरन्दर- — इन्द्र से (डाली हुई)
मुक्तमाल्यं — मोतियों की माला वाला
महिषासुरस्य — महिषासुर राक्षस के

मञ्जु- — सुन्दर
मञ्जीर- — पायलों की
शिंजित- — मीठी झंकार से
मनोहरम् — मन को मोहित करने वाला
अम्बिकायाः — जगत माता का
पादाम्बुजं — चरणकमल

मौलौ	— सिर पर	मे	— मेरी
हठेन	— ज़ोर से (आग्रह से)	विजयाय	— विजय के लिए
निहितं	— रखा हुआ (तथा)	भवतु	— हो ।

सौन्दर्यविभ्रमभुवो भुवनाधिपत्य-
सम्पत्तिकल्पतरवस्त्रिपुरे ! जयन्ति ।
एते कवित्वकुमदप्रकरावबोध-
पूर्णेन्दवस्त्वयि जगज्जननि प्रणामाः ॥२॥

पदच्छेदः

सौन्दर्य विभ्रमभुवः भुवनआधिपत्य
सम्पत्तिकल्पतरवः त्रिपुरे ! जयन्ति ।
एते कवित्व कुमुद प्रकरअवबोध
पूर्ण इन्दवः त्वयि जगत् जननि ! प्रणामाः ॥२॥

जगज्जननि	— हे जगत की माता	कुमुद-	— कुमुद पुष्पों के
त्रिपुरे !	— त्रिपुरे	प्रकर-	— समूह को
सौन्दर्य-	— (आपके) सुन्दरता के	अवबोध-	— विकास में लाने के लिए
विभ्रम-	— विकास की	पूर्णेन्दवः	— परिपूर्ण चन्द्रमा जैसी (हैं) इस कारण
भुवो	— भूमियां	त्वयि	— (भक्तों के) तुम्हारे प्रति
भुवन-	— तीन भुवनों के	एते	— यह [बार बार किए हुए]
आधिपत्य-	— स्वामिभाव रूपी	प्रणामाः	— प्रणाम
संपत्ति-	— सम्पदा के पाने के लिए	जयन्ति	— विजय शाली हैं ।
कल्पतरवः	— कल्पवृक्ष के समान (हैं)		
कवित्व	— (तथा) सर्वज्ञता रूपी		

देवी को बार बार प्रणाम करने से तीनों भुवनों का स्वामि-भाव तथा सर्वज्ञता इत्यादि शक्तियां प्राप्त होती हैं।

सर्वज्ञता से सर्वकर्त्ताभाव, पूर्णता, व्यापकता तथा नित्यता भी समझ लेना चाहिए।

देवि ! स्तुतिव्यतिकरे कृतबुद्धयस्ते
वाचस्पतिप्रभृतयोपि जडीभवन्ति ।
तस्मान्निसर्गजडिमा कतमोहमऽत्र
स्तोत्रं तव त्रिपुरतापनपत्नि ! कर्तुम् ॥३॥

पदच्छेदः

देवि ! स्तुति व्यतिकरे कृतबुद्धयः ते
वाचस्पति प्रभृतयः अपि जडी भवन्ति ।
तस्मात् निसर्ग जडिमा कतमः अहम् अत्र
स्तोत्रं तव त्रिपुरतापन पत्नि ! कर्तुम् ॥३॥

देवि !	— हे देवी !
ते	— तुम्हारी
स्तुति-	— स्तुति करने के
व्यतिकरे	— उद्योग में
कृतबुद्धयः	— तीक्ष्ण बुद्धि वाले
वाचस्पति-	— बृहस्पति
प्रभृतयः	— इत्यादि [देववर्ग]
अपि	— भी
जडी	— असमर्थ
भवन्ति	— हो जाते हैं
तस्मात्	— इस कारण
त्रिपुर-	— हे त्रिपुरासुर को
तापन-	— मारने वाले [शिव] की
पत्नि !	— अभिन्न शक्ति !
अत्र	— इस संसार में
तव	— तुम्हारी
स्तोत्रं	— स्तुति
कर्तुं	— करने के लिए
निसर्ग-	— स्वाभाविक
जडिमा	— मन्द बुद्धि
अहं	— मैं
कतमः	— किस गिनती में हूं।

मातस्तथापि भवती भवतीव्रताप-
विच्छित्तये स्तुतिमहार्णवकर्णधारः।
स्तोतुं भवानि स भवच्चरणारविन्द-
भक्तिग्रहः किमपि मां मुखरी करोति ॥४॥

पदच्छेदः

मातः ! तथा अपि भवती भव तीव्रताप-
विच्छित्तये स्तुति महा अर्णव कर्णधारः।
स्तोतुं भवानि ! स भवत् चरण अरविन्द-
भक्तिग्रहः किम् अपि मां मुखरी करोति ॥४॥

मातः !	— हे माता !		(तथा)
तथापि	— फिर भी	भवत्-	— आपके
भव-	— संसार के	चरणारविन्द-	— चरण कमलों की
तीव्र-	— तीक्ष्ण	भक्तिग्रहः	— भक्ति का हठ
ताप-	— संताप के	भवती	— आप की
विच्छित्तये	— नाश करने के लिए	स्तोतुं	— स्तुति करने के लिए
स	— वह	मां	— मुझे
स्तुति-	— स्तुति	भवानि !	— हे भवानी !
महार्णव-	— (जो महान् रूपी) बड़े सागर को (पार करने के लिये)	किमपि	— कुछ कुछ
		मुखरी	— वाचाल
		करोति	— बनाता है।
कर्णधारः	— मल्लाह रूप है		

सूते जगन्ति भवती भवती बिभर्ति
जागर्ति तत्क्षयकृते भवती भवानि।

आलीजनस्य परिहासवचांसि मन्ये
मन्दस्मितेन तव देवि ! जडी भवन्ति ॥१६॥

पदच्छेदः

अर्धेन किं नवलताललितेन मुग्धे !
क्रीतं विभोः परुषम् अर्धं इदं त्वया इति ।
आली जनस्य परिहास वचांसि मन्ये
मन्द स्मितेन तव देवि ! जडी भवन्ति ॥१६॥

मुग्धे !	— हे सुन्दरी ! पार्वती!	इति	— इस प्रकार के
किं त्वया	— क्यों तूने	आलीजनस्य	— सखियों के
नवलता-	— नई लता [जैसे कोमल और सुन्दर]	परिहास-	— हंसी के
		वचांसि	— वचन
ललितेन-	— (तथा) प्रेम से पाले हुए	देवि !	— हे देवी !
		तव	— आपकी
अर्धेन-	— अपने आधे शरीर के बदले	मन्द-	— कोमल (मन को हरने वाली)
विभोः	— शिव का	स्मितेन	— मुस्कराहट से
इदं	— यह	मन्ये	— मेरी समझ में
परुषम्	— कठिन [खुरदुरा]	जडी	— जड
अर्धं	— आधा शरीर	भवन्ति	— बन जाते हैं[1] ।
क्रीतं	— मोल लिया ?		

ब्रह्माण्ड बुद्बुदकदम्बकसंकुलोऽयं
मायोदधिर्विविधदुःखतरङ्गमालः ।

---

१. अर्थात् देवी के अन्तर्मुख होने से ही सहेलियां (इन्द्रिय शक्तियां) जड (सत्ता हीन) हो जाती हैं ।

स्वरस-	— अपने ही [चित्] रस से	यस्मैकस्मैचन	— किसी अलौकिक [मन और वाणी के अगोचर]
परमानंदविभव	— परमानंद रूप ऐश्वर्य को	मुग्धाय	— सुन्दर [आनन्द रूप]
प्रबोधाकाराय	— जगाने वाले स्वरूप वाली [तुझ देवी को]	महसे	— तेज को [चित् रूप को]
शिवस्य	— शिव से भी	नमो भवतु	— नमस्कार हो।

लुठद्गुञ्जाहारस्तनभरनमन्मध्यलतिका-
मुदञ्चद्घर्माम्भः कणगुणितनीलोत्पलरुचम्।
शिवं पार्थत्राणप्रवणमृगयाकारगुणितं
शिवामन्वग्यान्तीं शवरमहमन्वेमि शवरीम्॥३॥

पदच्छेदः

लुठत् गुञ्जाहार स्तनभर नमन् मध्यलतिकाम्
उदञ्चत् धर्माम्भः कण गुणित नीलोत्पलरुचम्।
शिवं पार्थत्राण प्रवण मृगया आकार गुणितं
शिवां अन्वक्यान्तीं शवरं अहं अन्वेमि शवरीम्॥३॥

उदञ्चत्-	— निकलते हुए	लुठत्-	— लटकते हुए [स्पन्दमान्]
धर्माम्भः-	— पसीने के		
कण-	— परमाणुओं [कतरों] से	गुञ्जाहार-	— गुंजा फलों [रत्तियों] के
गुणित-	— समान बने हुए		
नीलोत्पलरुचम्	कमल की शोभा-युक्त [मुख वाले शिव के]	स्तन भर-	— भारी वक्षःस्थलों के बीच में
		नमन्-	— लटकते हुए
पार्थत्राण-	— अर्जुन की रक्षा करने में	मध्यलतिका	— हार के बीच वाले आभूषण युक्त